IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

# प्रकरण :- छात्र-छात्राओं के आत्म प्रत्यय के विकास मे शिक्षा की भूमिका |

**सुनिता कुमारी**

**पीएचडी स्कालर**

**राधा गोविंद यूनिवर्सिटी**

**रामगढ़ कैम्प:-(झारखंड)829122**

## सारांश

शिक्षा एक मूल साधन है, जो माता के समान पालन पोषण करती है, पिता के समान उचित मार्गदर्शन करती है तथा अन्य परिवारिक सदस्यों की भांति सांसारिक चिंताओं को दूर करके प्रसन्नता प्रदान करती है।अतःशिक्षा व्यक्ति को उसके स्वयं के गुण-दोषों अर्थात स्वतः बोध का ज्ञान प्रदान करती है तथा व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास करने में सहायता प्रदान करती है| इस प्रकार व्यक्ति सर्वप्रथम स्वयं का विकास करने के तत्पश्चात संपूर्ण समाज तथा राष्ट्र का विकास संभव है|बढ़ती हुई जनसंख्या वाले राष्ट्र के समझ शिक्षा का प्रमुख कार्य व्यवसायिक शिक्षा छात्रों को दिए जाने से पूर्व उनके स्वतः बोध (आत्म – प्रत्यय) का अध्ययन कराना अत्यंत आवश्यक है|

आत्म - प्रत्यय वह सामान्य पद है जिसका अर्थ है - व्यक्ति के गुणों और व्यवहार आदि के संबंध में उसका मत| एक व्यक्ति अपने गुणों और व्यवहार आदि के संबंध में जो मत रखता है वही उसका आत्म-प्रत्यय या आत्मबोध है| प्रत्येक व्यक्ति का आत्म प्रत्यय उसके विचारों पर आधारित होता है तथा आत्मप्रत्यय व्यक्तित्व का केंद्र बिंदु है।

**विशिष्ट शब्द :- शिक्षा** -सीखने- सिखाने से , **आत्म -प्रत्यय** - गुणों और व्यवहार आदि के संबंध में स्वयं मत

**भूमिका:-** शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व का विकसित करने वाली प्रक्रिया है। यही प्रक्रिया उसे समाज में एक वयस्क की भूमिका निभाने के लिए समाजीकृत करती है तथा समाज के सदस्य एवं एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए व्यक्तिको आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध कराती है।

**शिक्षा का अर्थ:-** शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की 'शिक्ष धातु में 'अ' प्रत्यय लगाने से बना है। 'शिक्ष का अर्थ है सीखना और सिखाना। 'शिक्षा' शब्द का अर्थ हुआ सीखने-सिखाने की क्रिया।

'Education' शब्द की उत्पति लेटिन भाषा के 'Educatum' शब्द से मानी जाती है।

* Edcation' शब्द दो शब्दों- 'e' तथा 'duco' से मिलकर है |

'e' का अर्थ है- 'Out of' और 'duco' का अर्थ है 'to lead forth'। अत: Education शब्द का अर्थ है - 'आंतरिक को बाहार लाना। शिक्षाविद 'Education' शब्द की उत्पति लेटिन भाषा के निम्न शब्दों से भी मानते है यथा-

1. 'Educere'- इसका अर्थ है- 'To bring forth'

2. 'Educare'- इसका अर्थ है To educate'

जब हम शिक्षा शब्द के प्रयोग को देखते हैं तो मोटे तौर पर यह दो रूपों में प्रयोग में लाया जाता है:

* व्यापक अर्थ
* संकुचित अर्थ

**व्यापक अर्थ :-** शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली सोदेश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य जागरिक बनाया जाता है। मनुष्य क्षण प्रतिक्षण लए-नए अनुभव प्राप्त करता है व करवाता है, जिससे उसका दिन-प्रतिदिन का व्यवहार प्रभावित होता है। उसका यह सीखना सिखाना विभिन्न समूहों, उत्सवों, पत्र पत्रिकाओं, रेडियो,टेलीविजन आदि से अनौपचारिक रूप से होता है। यही सीखना- सिवाना शिक्षा के व्यापक रूप है।

व्यापक अर्थ में शिक्षा का कार्य जीवन-भर चलता रहता है व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक कुछ-न-कुछ सीखता रहता है वास्तव में, उसका सम्पूर्ण जीवन ही शिक्षा का काल है। बालक अपने माता-पिता, भाई-बहिनों, मित्रों और अध्यापकों से हर समय और हर जगह कुछ-न-कुछ सीखता है। बड़ा होने पर वह जीवन में प्रवेश करता है और विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के संपर्क में आता है। जिस प्रकार बालक घर में, स्कूल में और खेल के मैदान में दूसरों से सदैव कोई-न-कोई बात सीखता रहता है। उसी प्रकार वयस्क के रूप में वह दुकान, दफ्तर, पार्क आदि में हर समय किसी-न-किसी प्रकार की शिक्षा अवश्य प्राप्त करता है। इस प्रकार, शिक्षा का क्षेत्र अति विस्तृत है अतः शिक्षा उस विकास का नाम है जो बचपन से लेकर जीवन के अन्तिम क्षण तक चलती रहती है। इसी विकास के कारण व्यक्ति अपनी परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करता है, जीवन की विभिन्न समस्याओं को सुलझाता है और अपने कर्तव्यों का पालन करता है। इस विकास के बिना उसका जीवन सफल नहीं होता है। शिक्षा' शब्द का व्यापक अर्थ यही है।

**शिक्षा के व्यापक अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम कुछ विद्वानों के विचारों को नीचे अंकित कर रहे हैं, यथा-**

**जे. एस. गेकेंजी** " व्यापक अर्थ में शिक्षा एक एसी प्रक्रिया है जो आजीवन चलती रहती है और जीवन से प्राप्त प्रत्येक अनुभव से भंडार में वृद्धि होती है।"

**टी. रेगॉण्ट (T.Raymont)** का यह कथन उल्लेखनीय है- "शिक्षा, विकास का वह क्रम है, जिससे व्यक्ति अपने को धीरे-धीरे विभिन्न प्रकार से अपने भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बना लेता

है जीवन ही वास्तव में शिक्षित करता है व्यक्ति अपने व्यवसाय, पारिवारिक जीवन, मित्रता विवाह, पितृत्व, मनोरंजन, यात्रा आदि के द्वारा शिक्षित किया जाता है"।

**संकुचित अर्थ:-** शिक्षा किसी समाज में एक निश्चित समय तथा निश्चित स्थानों (विद्यालय, महाविद्यालय) में सुनियोजित ढंग से चलने वाली एक सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा विद्यार्थी निश्चित पाठ्यक्रम को पढ़कर संबंधित परीक्षाओं को उत्तीर्ण करना सीखता है।

शिक्षा के संकुचित या सीमित अर्थ के अनुसार शिक्षा का अभिप्राय, बालक को स्कूल में दी जाने वाली शिक्षा से हैं। दूसरे शब्दों में, बालक को एक निश्चित योजना के अनुसार, एक निश्चित समय तक और निश्चित विधियों से निश्चित प्रकार का ज्ञान दिया जाता है उसकी शिक्षा कुछ विशेष प्रभावों और कुछ विशेष विषयों तक ही सीमित रहती है। उसको वही शिक्षा दी जाती है, जिसे समाज के वयस्क उसके जीवन के लिए लाभप्रद समझते हैं। बालक इस शिक्षा को केवल कुछ ही वर्षों तक प्राप्त कर सकता है उसको प्राप्त करने का मुख्य स्थान विद्यालय होता है। विद्यालय में एक विशेष प्रकार का व्यक्ति, शिक्षा देने का कार्य करता है, जिसे शिक्षक कहते हैं। उस पर बालक की शिक्षा का उत्तरदायित्व होता है। बालक विद्यालय में कई विषयों की शिक्षा प्राप्त करता है।

अतः साधारणतः शिक्षा का अर्थ विशेष प्रकार की पुस्तकें पढ़ना समझा जाता है। शिक्षा शब्द का संकुचित अर्थ यही है। इस शिक्षा से बालक को किसी प्रकार का लाभ नहीं होता है। वह तोते के समान विषयों को रट लेता है, पर उसे उनका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। उसे पुस्तकीय ज्ञान तो प्राप्त हो जाता है. पर उसके मस्तिष्क और चरित्र का विकास नहीं हो पाता है। अतः इस प्रकार की शिक्षा को 'शिक्षा' न कहकर 'अध्यापन' या निर्देश (Instruction) के नाम से भी पुकारा जाता है।

**शिक्षा' के संकुचित अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम कुछ विद्वानों के विचारों को नीचे अंकित कर रहे हैं; यथा-**

**टी. रेमोंट-** "संकुचित अर्थ में शिक्षा का प्रयोग बोलचाल की भाषा में व्यक्ति के आत्मविकास और वातावरण के सामान्य प्रभावों को अपने में कोई स्थान नहीं देती है। इसके विपरीत, यह केवल उन विशेष प्रभावों को अपने में स्थान देती है, जो समाज के अधिक आयु के व्यक्ति जानबूझकर और नियोजित रूप में अपने से छोटों पर प्रभाव डालते है ।"

**जे. एस. मेकैंजी.-** संकुचित अर्थ में शिक्षा का अभिप्राय हमारी शक्तियों केविकास और उन्नति के लिए चेतना पूर्वक किये गये किसी भी प्रयास से हो सकता है।"

**व्यक्तिगत जीवन में शिक्षा के कार्य (Functions of Education in Personal Life)** व्यक्तिगत जीवन में शिक्षा के कार्य देश-काल एवं समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप निर्धारित और परिवर्तित होते रहे हैं। हमारे समाज की वर्तमान आवश्यकताओं, मूल्यों, उद्देश्यों तथा संरचना को ध्यान में रखते हुए व्यक्तिगत जीवन में शिक्षा के निम्नलिखित कार्यों का उल्लेख किया जा सकता है।

**1. जन्मजात शक्तियों एवं गुणों का विकास-** शिक्षा का मुख्य कार्य मनुष्य की जन्मजात शक्तियों तथा गुणों का सम्यक् विकास करके उसके जीवन को सफल बनाना है। बालक प्रेम, दया, करुणा, सहानुभूति, कल्पना, जिज्ञासा, आत्म-गौरव तथा आत्म-समर्पण जैसी अनेक विशिष्ट शक्तियों व गुणों के साथ जन्म लेता है, जिनके अभिप्रकाशन में शिक्षा की प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।

**2. सन्तुलित व्यक्तित्व का विकास-** शिक्षा बालक के व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास करती है। शिक्षा के माध्यम से बालक के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों-शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सांवेगिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक का सर्वांगीण विकास होना चाहिए। शिक्षा के इस कार्य को सभी शिक्षाविदों ने महत्त्वपूर्ण माना है। ...। फ्रेडरिक ट्रेसी का कथन है, "समस्त शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य व्यक्तित्व के आदर्श की पूर्ण प्राप्ति है। यह आदर्श सन्तुलित व्यक्तित्व है।"

**3. वयस्क जीवन की तैयारी**- प्रसिद्ध विद्वान विलमॉट ने कहा है, "शिक्षा जीवन की तैयारी है।" इसका अभिप्राय यह है कि शिक्षा का कार्य बालक को वयस्क जीवन के लिए भली प्रकार तैयार करना है। वास्तव में शिक्षित व्यक्ति ही विषम परिस्थितियों तथा कठिनाइयों का धैर्यपूर्वक सामना करते हुए जीवन में आगे बढ़ सकता है। बालक वयस्क होकर एक समाज का जिम्मेदार नागरिक बनता है, तब उसके कुछ अधिकार और कर्तव्य होते हैं। शिक्षा की प्रक्रिया बालक को इन अधिकारों, कर्तव्यों तथा दायित्वों से परिचित कराती हुई भावी जीवन के लिए तैयार करती है।

**4. व्यावसायिक कुशलता की प्राप्ति-** शिक्षा व्यक्ति को विभिन्न व्यवसायों का ज्ञान देती है और उसे अपने व्यवसाय को सुन्दर व व्यवस्थित ढंग से करने की प्रेरणा देती है। शिक्षित व्यक्ति अपनी योग्यता व पसन्द के अनुसार व्यवसाय चुनकर उसमें कुशलता प्राप्त करता है और इस प्रकार भौतिक सम्पन्नता अर्जित करता है। छात्रों को श्रेष्ठ व्यावसायिक प्रशिक्षण उपलब्ध कराने का काम शिक्षा ही कर सकती है। यही कारण है कि शिक्षा का मुख्य कार्य छात्रों में व्यावसायिक कुशलता का विकास करना होना चाहिए।

**5. मूल-प्रवृत्तियों का नियन्त्रण-** मूल-प्रवृत्तियाँ मानव के व्यवहार का संचालन करती हैं। जिज्ञासा, काम, पलायन, ह्रास आदि मूल-प्रवृत्तियाँ बालक में जन्म से ही पायी जाती हैं, जबकि आत्म-गौरव, आत्महीनता तथा सामुदायिकता की मूल-प्रवृत्तियाँ अर्जित हैं। शिक्षा इन मूल-प्रवृत्तियों के नियन्त्रण तथा शोधन का कार्य करती है ताकि वे अच्छे उद्देश्य वाली बनकर समाज का अधिकाधिक हित कर सकें।

**6. आत्मनिर्भर बनाना-** आत्मनिर्भर व्यक्ति का जीवन सुखमय होता है। वह स्वयं अपने कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पन्न करते हुए समाज की उन्नति में भी योगदान देता है। वस्तुतः वर्तमान परिस्थितियों में समाज को आत्मनिर्भर लोगों की ही आवश्यकता है। शिक्षा का यह प्रमुख कार्य है कि वह व्यक्ति को अपना भार स्वयं अपने ऊपर लेना सिखाये तथा उसे इस योग्य बनाये कि वह समाज के अन्य लोगों को भी सहारादे सके।

**7. अनुभवों का पुनसँगठन एवं पुनर्रचना-** जीवन के अनेक कार्य अनुभवों से ही होते हैं। शिक्षा व्यक्ति को सभी आवश्यक अनुभव प्राप्त करने में उसकी सहायता करती है। अतीत के अनुभव मनुष्य के वर्तमान जीवन को सफल बनाने में योगदान तो करते हैं, किन्तु उन्हें किसी विशेष परिस्थिति में मूल्य तथा उपयोगिता की दृष्टि से ही प्रयोग किया जा सकता है। मानव-जीवन की भावी प्रगति के लिए आवश्यक है

कि अतीत के अनुभवों का पुनसँगठन और उनकी पुनर्रचना भली प्रकार हो। यह महत्त्वपूर्ण कार्य शिक्षा ही करती है।

**8. वातावरण से अनुकूलन-** वातावरण से अनुकूलन अनिवार्य है। जो प्राणी स्वयं को वातावरण के अनुकूल नहीं बना पाते, वे प्रायः नष्ट हो जाते हैं। वातावरण व्यक्ति के सिर्फ उन्हीं कार्यों को प्रोत्साहित करता है जो उसके अनुकूल होते हैं। अतएव शिक्षा का प्रधान कार्य है कि वह व्यक्ति को वातावरण के अनुकूल बनाये। टॉमसन (Tomson) का कथन है, "वातावरण शिक्षक है और शिक्षा का कार्य है छात्र को उस वातावरण के अनुकूल बनाना, जिससे कि वह जीवित रह पके और अपनी मूल-प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट करने के लिए अधिक-से-अधिक सम्भव अवसर प्राप्त कर सके।"

**9. मार्गदर्शन-मानव-** जीवन की वास्तविक प्रगति उचित मार्गदर्शन पर आधारित है। 'प्रयास एवं भूल' के सिद्धान्त पर प्रगति का मार्ग खोजने के प्रयास में मनुष्य अपने जीवन का बहुमूल्य समय गवाँ देता है। उचित मार्गदर्शन पाकर व्यक्ति प्रत्येक परिस्थिति से सामंजस्य बनाने में सक्षम होता है तथा प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त करता है। इसी कारण से मार्गदर्शन अति आवश्यक है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्ति को अभीष्ट मार्गदर्शन करने का कार्य शिक्षा ही करती है।

**आत्म प्रत्यय का अर्थ:-** आत्म प्रत्यय शब्द एक ऐसा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण है जो मनुष्य की स्वयं की धारणा को विकसित करती है, इसमें मैं क्या हूँ ? मैं कोन हूँ ? की प्रतिमा स्वयं में पनपती है | यह स्वयं के समग्र आकलन को दर्शाती है | दूसरों शब्दों में – आत्म प्रत्यय शब्द का तात्पर्य उस चित्र या छवि से है जिसे कोई व्यक्ति अपने लिए देखता है | यहाँ आत्म अवधारणा स्वयं के बारे में ज्ञान का संचय है, जैसे शारीरिक, सामाजिक ,शैक्षिक, नैतिक, बौद्धिक विशेषताओं आदि के बारे में विश्वास |

**आत्म प्रत्यय की परिभाषा:-**

**कैटेल (1957) के अनुसार :**

"आत्म प्रत्यय व्यक्तित्व का केन्द्र बिन्दु है।"

**आइजेक (1972) के अनुसार :**

"व्यक्ति के व्यवहार, योग्यताओं और गुणों के संबंध में उसकी अभिवृत्ति, निर्णयों और मूल्यों के योग को ही आत्म-प्रत्यय कहते है।"

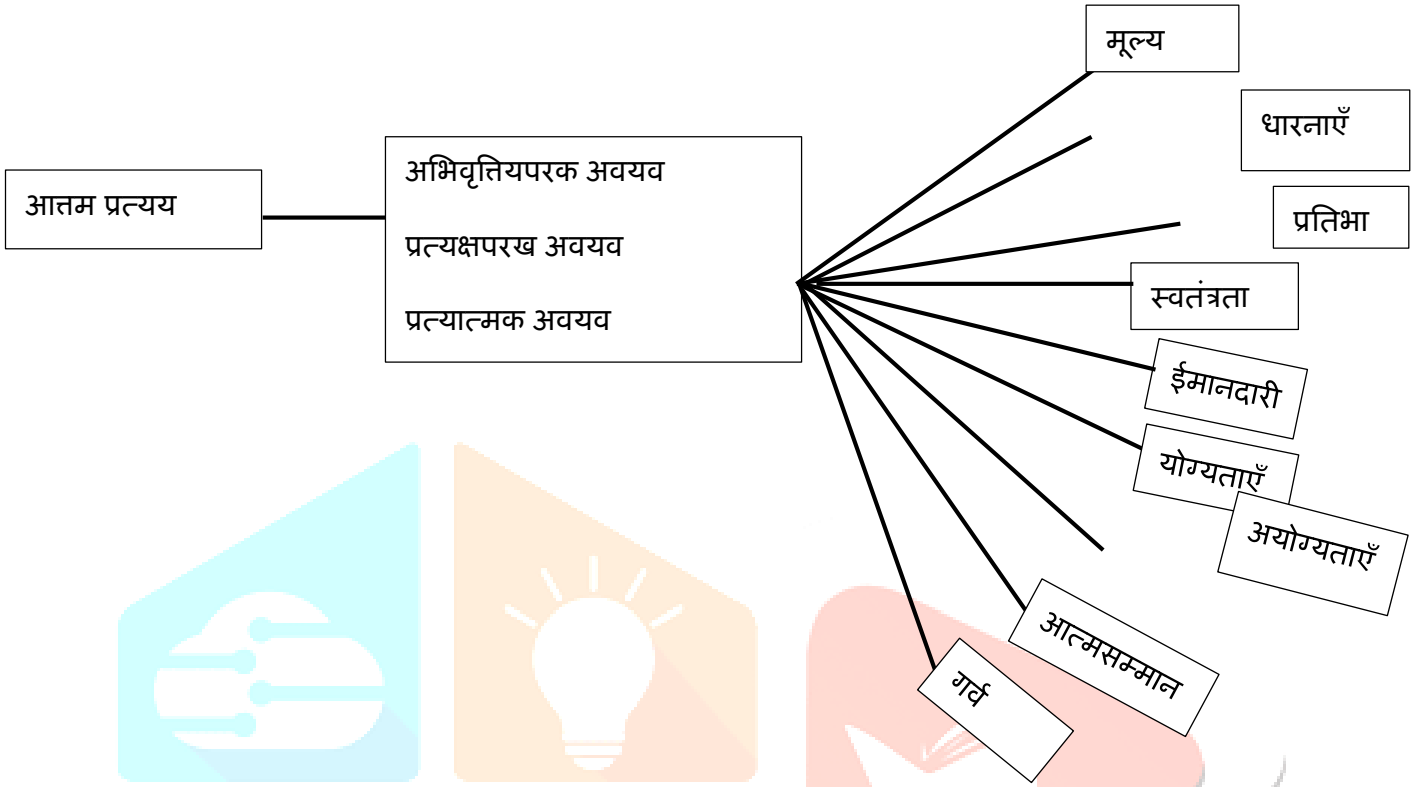


**आत्म प्रत्यय के अवयव:-**

**1) प्रत्यक्षपरक अवयव:-** इस अवयव के अन्तर्गत शरीर की प्रतिभा आती है तथा यह दूसरो पर क्या छाप छोड़ता है यह भी उसके प्रत्यक्ष परक अवयव के अन्तर्गत आता है।

**(2) प्रत्यात्मक अवयव:-** इसके अन्तर्गत उसकी वह विशेषताएँ आती है, जिनके कारण वह दूसरों से भिन्न है| इसके अंतर्गत उसकी योग्यताएं और अयोग्यताएं भी आती है| जैसे- ईमानदारी, आत्मविश्वास,स्वतंत्रता अथवा गुणों के विपरीत गुण |

**(3)अभिवृत्तिपरक अवयव :-** इसके अंतर्गत व्यक्तिक के स्वयं के प्रति भाव आते है| इसके अंतर्गत वह अभिवृत्ति भी आती हैं जो इसके आत्मसम्मान, आत्म उपागम, गर्व आदि से संबंधित होती है| साथ ही उसके विश्वास, धारनाएं और विभिन्न प्रकार के मूल्य, आदर्श और आकांक्षाएं भी आती है|

**आत्म प्रत्यय का विकास:-**

आत्म प्रत्यय जीवन के प्रथम वर्ष के अंत तक वह अपने आप को एक अलग प्राणी के रूप में समक्षने लगता है। वह अपनी आवाज से पहले अपनी माँ की आवाज पहचानता है। इस प्रकार वह शीशे में अपनी शक्ल से पहले दूसरों की शक्ल पहले पहचानना सीखता है।

बच्चों के आत्म प्रत्यय में दो प्रकार की प्रतिभाएँ होती है।

- शारीरिक आत्म प्रतिभाएँ
- मनोवैज्ञानिक आत्म प्रतिभाएँ

**शारीरिक आत्म प्रतिभाएं** :- इन आत्म प्रतिभाओं बालकों की भावनाएं, विचार, संवेग, साहस, ईमानदारी, स्वतंत्रता, आत्म-विश्वास, योग्यताएं तथा आकांक्षाएं आदि सम्मिलित होती है।

**मनोवैज्ञानिक आत्म प्रतिभाएं:-** इन आत्म प्रतिभाओं का विकास पहले होता है इसका संबंध बालकों की शारीरिक बनावट और रंग रूप से होता है।

## आत्म प्रत्यय की विशेषताएं

1. एक बार आत्म प्रत्यय बनने के बाद यद्यपि वह स्थिर होते हैं परन्तु नये अनुभवों के बढ़ने के साथ-साथ इनमें भी संशोधन और परिवर्तन होता है।
2. आत्म प्रत्ययों में क्रमबद्धता पायी जाती है।
3. बालक में प्रारिम्भक अवस्था मे जो आत्म प्रत्यय बनतें है वह माता-पिता या परिवार के सदस्यों के शिक्षण के आधार पर बनते है। इसे प्रारम्भिक आत्म प्रत्यय कहते है।
4. प्रारम्भिक आत्म प्रत्ययों में शारीरिक और मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार की आत्म प्रतिभाएं पाई जाती है।
5. जब बालक दूसरे बच्चों के साथ खेलना प्रारम्भ करता है स्कूल जाना शुरू करता है तब उसमें पहले से बने प्रारंभिक प्रत्ययों का संशोधन और परिवर्द्धन होने लगता है। इस प्रकार के आत्म-प्रत्यय को उद्दीपक आत्म-प्रत्यय कहते है |
6. बालक अपने आत्म प्रत्ययों में समय-समय पर अपने सामाजिक और सांस्कृतिक समूहों के मूल्यों, नियमों और प्रतिमानों के अनुसार संशोधन करते रहते है।
7. 6-7 वर्ष का बच्चा अपने परिवार की प्रतिष्ठा और अपने परिवार के सामाजिक और आर्थिक स्तर का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। माता-पिता के सामाजिक आर्थिक स्तर केअर्थों को अपने आत्म-प्रत्यय से जोड़ लेता है।

**आत्म-प्रत्यय के प्रकार:** कैटेल (1957) के अनुसार वर्गीकरण

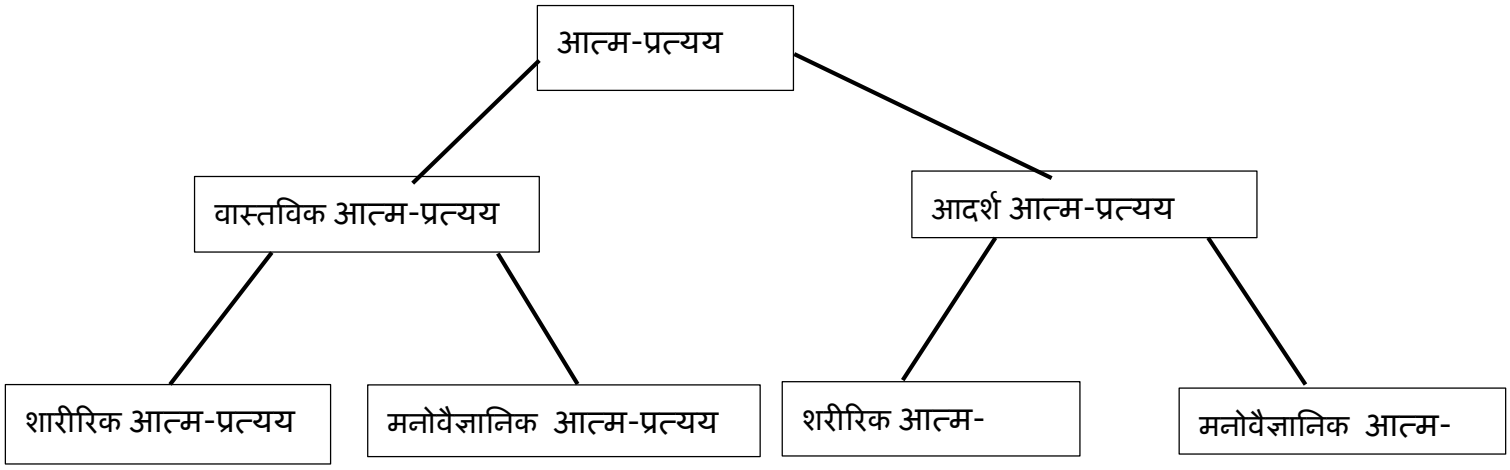


**कुछ अनुसंधानकर्ताओं के अनुसार वर्गीकरण**

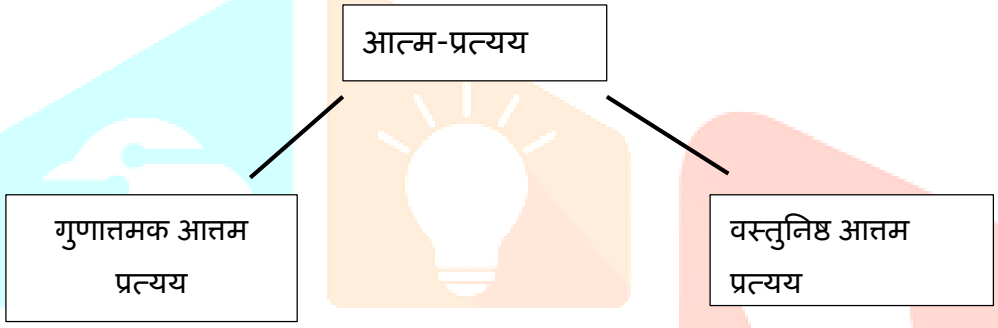


## वास्तविक आत्म- प्रत्यय :-

यह वह प्रत्यय है जो व्यक्ति अपने संबंध में निर्मित करता है कि वह क्या है? और कौन हैं? यह एक प्रकार की दर्पण प्रतिमा है।

- **शारीरिक आत्म प्रत्यय :** इस प्रत्यय के अन्तर्गत व्यक्ति शारीरिक रूप से कितना आकर्षण है इसका अध्ययन किया जाता है।
- **मनोवैज्ञानिक आत्म प्रत्यय**: इसके अन्तर्गत ईमानदारी, साहस या इनसे विपरीत गुण जैसे बैमानी, अयोग्यताएँ आदि का अध्ययन किया जाता है।

## आदर्श आत्म प्रत्यय :-

यह स्वयं के संबंध में वह तस्वीर या प्रत्यय है जिससे स्पष्ट होता है कि बालक क्या बनना चाहता है। व्यक्तित्व प्रतिमान का संगठन किस मात्रा का और कितना होगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि बालक के आत्म प्रत्यय में कितनी स्थिरता है।

- **गुणात्मक आत्म प्रत्यय :** यह प्रत्यय अस्थिर होता है। यह प्रत्यय  मै अपने बारे में क्या सोचता हूँ| पर आधारित होता है।

- **वास्तुनिष्ठ आत्म प्रत्यय :** यह आत्मप्रत्यय अपेक्षाकृत स्थिर होता है यह  दूसरे क्या सोचते है मेरे विषय में। इस परआधारित होता है |

## आत्म प्रत्यय को प्रभावित करने वाले कारक:-

बालक के आत्म प्रत्यय का विकास अनेक कारको पर आधारित है। इन्ही कारकों के प्रभावों के परिणामस्वरूप बालकों में प्रत्यय का विकास होता है। यह महत्वपूर्ण कारक अग्र प्रकार से है:-

- **परिपक्वता :** - एक आयु विशेष में सही और सामान्य प्रत्ययों के विकास के लिये आवश्यक है कि उसकी मानसिक परिपक्वता आयु के अनुसार हो। यदि यह आयु के अनुसार नहीं है तो बालक अपनी आयु के अनुसार उद्दीपकों के अर्थ को समक्षने में असमर्थ होगा ।

- **ज्ञानेन्द्रियों:** - ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से ही बालक बाह्य वातावरण की उत्तेजनाओं में उत्पन्न ऊर्जा परिवर्तनों को ग्रहण करता है और जब यह उत्तेजना संबंधी आवेग मस्तिष्क में पहुँचते है तो बालक उत्तेजना की संवेदना ओर प्रत्याशीकरण करता है। **उदाहरण-** यदि एक बालक को कम सुनाई देता है तो सुनने से संबंधित उसमें जो प्रत्यय विकसित होंगे वे त्रुटिपूर्ण होंगे|

- **बौद्धिक क्षमताएँ:** - आत्म-प्रत्ययों के विकास का बौद्धिक क्षमताओं से महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित होता है। बौद्धिक क्षमताओं में बालक की बुद्धि, तर्क, चिन्तन कल्पना और स्मृति आदि योग्यताओं का विकास यदि सामान्य ढंग से हुआ है तो बालक अपने चारों और के वातावरण की चीजों के ज्ञान को सामान्य ढंग से अर्जित करेगा।

- **सीखने के अवसर:** - बिनाके 1951 ने अपने अध्ययनों में देखा कि प्रत्ययों के विकास की मात्रा तथा प्रत्यों के गुण दोनों ही सीखनें के अवसरों से प्रभावित होते है।

- **अनुभव के प्रकार :-** बालक की प्रारंभिक अवस्था में प्रत्ययों का विकास मूर्त अनुभवों पर आधारित होता हैं तथा बाद के प्रत्ययों का निर्माण मूर्त - अमूर्त तथा सभी अन्य प्रकार के अनुभवों पर आधारित होता है।

- **लिंग:-** लड़के और लडकियों के प्रत्ययों में उनकी आयु बढ़ने के साथ- साथ अंतर बढ़ता जाता है।

- **समायोजन:-** जिन बालको का जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समायोजन अच्छा होता है. उनके क्षेत्रों में समायोजन अच्छा होता है, उनके प्रत्यय अधिक शुद्ध तथा वास्तविक होते हैं।

- **सूचना प्रतिपूर्ति :-** बालकों के प्रत्ययों का अधिगम उस समय कठिन हो जाता है जब उन्हें सतय पर सही सूचना नहीं दी जाती है। बालकों में प्रत्ययों का विकास सूचना की मात्रा से प्रभावित होता है। साथ ही सूचना की प्रकृति से भी प्रत्यय निर्माण प्रभावित होता है।

- **सामाजिक वातावरण:** - बालकों में प्रत्ययों का विकास उसी प्रकार होता है जैसा उसका सामाजिक वातावरण होता है। यदि उसके घर में पूजा और धर्म पर अधिक बल दिया जाता है। तो उनमें धर्म और पूजा के प्रति धनात्मक और अपेक्षाकृत जल्दी प्रत्यय निर्मित होंगें।

- **चिन्ता :-** बालकों की चिन्ता भी आत्मप्रत्यय निर्माण को प्रभावित करती है। जिन बालकों में चिंता की मात्रा अधिक होती है। उनमें प्रत्ययों का निर्माण शीघ्र होता है। और कम चिंता वाले बालकों में प्रत्ययों का विकास अपेक्षाकृत देर से होता है।

- **बालक के परिवार का आर्थिक स्तर:-** बालक के परिवार का आर्थिक स्तर निम्न होने पर चिंता, दुख, परेशानी का वातावरण निर्मित होता है तथा इस वातावरण में बालक का आत्म-प्रत्यय प्रभावित होता है।

जहां से वह संस्कार और आचरण की बातें सीखते है

**निष्कर्ष :- शिक्षा वह है जो जीवन से आती है जो जीवन भर साथ निभाती है | बालक का प्रथम विदयालय उसका घर है** जहां से वह संस्कार और आचरण की बातें सीखते है| शिक्षा वह सभ्यता है, जो प्रत्यक पीढ़ी अपने उतराधिकारियों को उसे बनाए रखने और ऊंचा उठाने की योग्यता प्रदान करने के उदेश्य से देती है | शिक्षा व्यक्ति के आत्म प्रत्यय को बनाने मे अहं भूमिका प्रदान करती है | जिससे व्यक्ति अपने अंतर्निहित गुणों व विशेषताओं को जनता है |

## संदर्भित ग्रंथ-सूची


- माथुर.एस.एस।(1997-98) : शिक्षा मनोविज्ञान ,विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2
- पाठक.पी.डी.(2006) : शिक्षा मनोविज्ञान , विनोद पुस्तक मंदिर,आगरा -2